International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 09 Ver. III ||September 2018 || PP 92-94

भारतीय ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में नारियों के पहनावे का विवेचनात्मक विश्लेषण

डॉ अमन चंद्र
मध्यकालीन इतिहास विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज गोंडा

सारांश : *प्राचीन काल से ही भारतीय चिंतन में नारी प्रति दो परस्पर विरोधी विचारधारायें देखने को मिलती रहती है। एक तरफ नारी को सम्मानित करते हुए 'यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं, कहा गया है। तो दूसरी तरफ उतने ही विश्वास और दृढ़ता के साथ नारी को नरक का द्वार बताया गया है। यद्यपि नारी अपने विविध रूपों के द्वारा लोक, समाज एवं राष्ट्र को जीवन देती है, विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर रखती है और मानव जीवन को पूर्णता के साध्य शिखर तक पहुँचाने की परिस्थितियों का सृजन करती है। जीवन का सारा रूखापन और संघर्ष उसकी छाया में पड़ते ही सरस सहृदय हो जाता है।*

भूमिका

भारतीय चिंतन धारा में आदर्श नारी के लिए लज्जा और मर्यादा और गुण अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गए हैं। उस विचार के अनुसार घर की शोभा कन्या से होती है, सम्पत्ति की शोभा पंडितों से होती है, पुरूष का भूषण सद्बुद्धि है और स्त्री का भूषण लज्जा। समाज में विशेषकर उच्च वर्गीय लोगों में पर्दा प्रथा बड़ी कठोरता से लागू थी। समाज का हिन्दू वर्ग भी पर्दा प्रथा का पालन सामाजिक मर्यादा और सम्मान के रूप में बनाये रखा। मयादा को इस हद तक बांध दिया कि देहरी के बाहर भी स्त्री नहीं जा सकती, ऐसा करने से उसके कुल की लाज चली जायेगी, फलतः कविता में नायिका रूपी स्त्री भीतर ही खड़ी है। तत्कालीन समय में पर्दा प्रथा इतनी कठोरता से लागू थी कि स्त्रियाँ अपने रिश्तदारों के यहाँ भी जल्दी नहीं जाती थी। और यदि उन्हें अनुमति दी जाती थी तोवे पालकी जो चारों तरफ से ढकी रहती थीं, में बैठकर जाती थी। मुस्लिम स्त्रियाँ हिजाब पहनती थीं, कवि ने इसका उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से किया है। तत्कालीन समाज में पर्दा की कठोरता का संकेत इस सन्दर्भ में भी मिलता है कि जब ये उच्च वर्गीय स्त्रियाँ बीमार पड़ती थीं तो कोई पुरूष चिकित्सक उनका उपचार नहीं कर सकता था। उपचार के लिए उसके एक रूमाल को भीगो कर उसे पानी में डाल दिया जाता था और उसमें से आने वाली गंध के अनुरूप डाक्टर इलाज करता था। सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों में एक साधारण और सयंत्र मार्गी परदे का चलन था जिसे घूघट कहा जाता था। घूघट, दुपट्टा या साड़ी द्वारा निकालते थे। घूघट निकाल ने की प्रथा हिन्दू समाज में कब से हुआ और किन परिस्थितियों के कारण हुआ यह तो अनुसंधेय है, परन्तु इतना निश्चित है कि भारत में पदा का प्रचलन ईसा से काफी पूर्व भी था। निम्न वर्गीय स्त्रियों में चूँकि अपने घर वालों के साथ बाहर काम पर जाती थी इसलिए निम्न वर्ग में पर्दा प्रथा की कठोरता लागू नहीं थी। ये स्त्रियाँ स्वतंत्र रूप से घूघट हटाकर बाहर आ-जा सकती थी। तन मन ओत का घूघट कपट खोलि..... सामान्य रूप से रानी को सभा में लेकर बैठना उचित नहीं समझा जाता था, किन्तु उत्सव आदि के अवसर पर स्त्रियाँ सम्पूर्ण अलंकरण के साथ-साथ उपस्थित होती थी तथा जब वे राजा के साथ बाहर जाती थीं तो घूघट के बिना भी जा सकती थीं। पारिवारिक परिवेश में प्राचीन काल से ही माता का विशेष स्थान है। दुराचारी पिता के त्याग देने की अनुमति दी गई है, किन्तु माँ दुराचारिणी हो तब भी परित्याग सम्भव नहीं। कन्या परिवार में रहकर घर के कार्यों में हाथ बटाती है तथा ससुराल जाकर भी वह अपने मायके को नहीं भूल पाती थी घर के कार्यों को सूर्यास्त होने के पहले समाप्त कर लेने की अनुमति कन्या माँ से मांगती है। अवलोकित काल में कन्या के जन्म पर खुशी नहीं मनाते थे। राजपूतों में विशेष रूप से कन्या जन्म को अच्छा नहीं मानते थे। किन्तु कुछ परिस्थितियों में कन्या के जन्म पर उत्सव आदि करके खुशी मनाते थे। भारत जैसे धर्म परायण देश में विवाह एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है जो जीवन में ही नहीं वरन मृत्यु के उपरान्त भी नहीं टूटता है जिस स्त्री का विवाह जिस पुरूष से होता है उसे जीवन भर उसका निर्वाह करना चाहिए। पत्नी के रूप में स्त्री के सारे सपने इस बात को सिद्ध करने के लिए है कि वह पति के लिए पूर्ण रूप से समर्पित है। अनुराग और समर्पण की भावना इस हद तक होती है कि पत्नी अपने पति के सारे दोषों को छिपा जाती है और उसे कलंकित होनेसे बचा लेती है। गुरूजन दूबे ब्याह को, प्रति दिन कहत रिसाई पति की पत राखे बहू, आपुन बाँझ कहाई। इस सन्दभ्र में नारी के पास किसी अधिकार का अभाव नही है, किन्तु उसके नैतिक संस्कारों की मर्यादा यह है कि वह एक बार वरणकिये गये पति को किसी भी स्थिति में त्याग नहीं सकती चाहे वह पौरूषत्वहीन ही क्यों न हो अथवा क्रूर, कलंकी, या कोढी ही क्यों न हो। ऐसी स्थिति में अपने संस्कारों के अनुसार वह इस स्थिति को दैवीय घटना मानकर पति को निर्दोष समझती है तथा प्रत्येक स्थिति में उसका निर्वाह करना अपना नैतिक कर्तव्य समझती है। वस्तुतः कवियों की इस प्रकार की दृष्टि का आधार प्राचीन मानदण्ड है जिनके अनुसार यह कहा जाता है कि सदाचार से हीन, पर स्त्री में अनुरक्त, विद्या आदि गुणों से हीन भी पति पतिव्रता के लिए देवता के समान पूज्य होता है। तत्कालीन समाज में पत्नी के रूप में नारी का एक और आदर्श यह भी मिलता है कि वह कवेल पति के दोषों को छिपाये ही नहीं बल्कि पति के गुणों का भी वर्णन करें, उसे सब प्रकार से प्रसन्न रख तथा पति के भोजन करने के उपरान्त ही भोजन करें। पत्नी के रूप में पारी को परिवार के प्रति नैतिक कर्तव्यों का पालना भी करना पड़ता था। साथ ही पारिवारिक सदस्यों के प्रति नारी का व्यवहार मधुर तथा मर्यादा पूर्ण होना चाहिए, इसका उल्लेख भी कवियों ने किया है। पारिवारिक परिवेश में नारी का एक रूपं भाभी के रूप में है जिसमें पति के भाई को देवर और बहन को ननद कहा गया। भाभी और ननद का सम्बन्ध हमें दो रूपों में मिलता है-

1. ईर्ष्यामूलक,
2. प्रेममूलक।

कभी-कभी हम उम्र की नन्द होने से भाभी को प्यार मिल जाता है किन्तु स्नेह के साथ-साथ कभी-कभी फटकार भी सुननी पड़ती है। ऐसी नन्दे जो उम्र में बड़ी होती हैं वे नाना प्रकार की ताड़ना देने के साथ ही उसे पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध अच्छी बातों की शिक्षा भी दिया करती हैं। तत्कालीन समाज में पर्दा भी नारी का एक आदर्श बन चुका था। 18वीं शताब्दी का सामाजिक परिवेश ही ऐसा था कि पर्दे की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। शासकों तथा सामंतों का कामिनी रूप की ओर आकर्षित होना और स्त्री-संग्रह की मनोवृत्ति जिसके लिए इन्होंने एक अलग स्थान बना रखा था, जिसे हरम कहा गया; जैसे दूषित सामाजिक वातावरण में सुरक्षा के अभाव के कारण ही यह आवश्यक हो गया कि नारी घर में रहकर ही काम करे। संभव है कि राजनैतिक और सामाजिक अव्यवस्था वाले इस काल में पुरूष ने ही स्त्री-विषयक धारणाओं में परिवर्तन नहीं किया अपितु स्वतः स्त्री ने ही सुरक्षा के अभाव में बाह्य-समाज के समस्त कार्यों को त्यागकर घर के सीमित अधिकारों को अपना लिया हो। इसके अतिरिक्त हमारे समाज में प्रचलित स्वातंत्र्य की विरोधी विचारधाराओं ने भी निश्चित रूप से इन कवियों की नैतिक दृष्टि को प्रभावित किया होगा। कवियों का विचार हे कि स्त्री स्वातंत्रय उसके पतिव्रत की रक्षा नहीं कर सकता | परिणामतः स्त्री की रक्षा कौमार्य में पिता, यौवन में पति एवं वृद्धावस्था में पुत्र करता है। नारी के इस प्रकार असुरक्षित होने के कारण बाल विवाह जैसी कुप्रथा ने जन्म लिया। बाल विवाह किस आयु में होता था इस सन्दर्भ में मतभेद है। कोई बाल-विवाह के लिए 4-5 वर्ष की आयु रखता है तो कोई 7, 8 तथा 10 वर्ष तो कोई यह विवरण देता है कि हिन्दुओं में बालक के बोलने से पूर्व ही विवाह कर दिया जाता था। अनैतिक सम्बन्धों की बढ़ोत्तरी ने गणिका की संख्या में भी वृद्धि की। गणिका नारी के उस वर्ग को कहा गया जो धन लेकर किसी के भी साथ अनैतिक सम्बन्ध बना लेती है | इस प्रकार समाज में स्त्री का यह (गणिका) रूप अत्यधिक प्रबल हो गया था। यद्यपि वेश्यावृत्ति की निंदा की गई है। उसे विश्वास पात्र न बनाने का परामर्श दिया गया है और पुरूष को वश में करके धन हरण करने वाला तथा समाज में सौत के सदृश बताया गया। पुरूष को सामाजिक प्रतिष्ठा हरण करने वाला कहा गया। इतना सब कुछ होते हुए भी उसके हानि पर ध्यान न देते हुए पुरूष प्राचीन काल से ही गणिका को सर्वसाधारण उपयोग की वस्तु समझता रहा तथा बाजारू वस्तुओं के सदृश उन्हें भी जो चाहे धन देकर खरीद सकता था। सामान्यतः गणिका की जो परिभाषा कवियों ने दी है, उसमें धन की इच्छा को ही उसकी मूल प्रेरणा कहा है | उस युग के परिवेश पर दृष्टिपात करते हुए यह कारण स्वतः स्पष्ट है। निःसन्देह, मुगलकाल भारतीय इतिहास में वैभव का युग था तथापि आंतरिक रूप से वह पर्याप्त जर्जर हो चुका था। वेश्यावृत्ति का शिकार सामान्य और निम्न वर्ग का स्त्री समाज ही होता था। इस प्रकार धन और संरक्षण का अभाव इस व्यवसाय को अपनाने के लिए विवश करता होगा क्योंकि तत्कालीन समाज व्यवस्था में समाज का एक बहुत

बड़ा वर्ग आर्थिक आभावों से पीड़ित था, जिस आर्थिक विषमता के कारण गणिका जीवन का सूत्रपात होता था, वहीं आर्थिक व्यवस्था की विषमता को इससे बढ़ावा भी मिलता था। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि गणिकायें आर्थिक व्यवस्था का परिणाम थी और कारण भी सबसे विवश रूप में नारी दासी की अवस्था में दिखाई पड़ती है।

दासी सेवक होती थी जिसे अपनेद स्वामी का सब दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता था। नारी के गर्ह स्थित रूप का चित्रण तो मिलता है, परन्तु समाज में नारी का क्या स्थान है इस विशय पर कवि मौन है। सामान्यतः घर से बाहर निकलने का अधिकार ही उसे नहीं दिया गया। ऐसी स्थिति में पेशेवर समूह जो 12वीं शताब्दी आते-आते पेशेगत जातियों में परिणीत हो गई थी। उनकी स्त्रियाँ इस काल में भी सक्रिय थी। तमोलिन, हलवाइन बनीनी, नाइन आदि के अतिरिक्त स्त्री के जौहरिनि, छीपनि, पटइनि, सुनारिन, तेलिन, कुम्हारिन, दरजिन, जुलाहिन, बढ़इनि, लुहारिन आदि विभिन्न रूपों का उल्लेख मिलता है। हिन्दू समाज सदैव से सीता और पार्वती, सती-सावित्री आदि का अनुकरण करने वाली पतिव्रताओं की चरणराज से पवित्र होता रहा है। पतिव्रता नारी के आदर्श के लिए इस काल में भी प्रायः सीता, पार्वती तथा सती के उदाहरण दिये गये हैं। बहुविवाह की एक सबसे बड़ी हानि यह थी कि एक पति की मृत्यु हो जाने से एक साथ उसकी कई पत्नियों को विधवा होना पड़ता था और तत्कालीन समाज में सुरक्षा की स्थिति का अभाव था। परिणामतः सती[45] (जौहर) जैसी कुप्रथा ने जन्म लिया था तथा वे इस काल में भी एक सीमा तक समाज में प्रचलित प्रतीत होती है। भारतीय समाज में नारी का कार्य स्थल और लीला भूमि प्रायः घर ही रहा है चाहे वह पिता हो या पति का। कवियों ने स्त्रियों की दिनचर्या में नारी को घर के सारे काम रसोई करती हुई, किसी को आँख में अंजन लगाते दिखाया है तो दूसरी को पांव में महावर देत । कोई उत्साह पूर्वक स्नान करने गई है और उसके वस्त्र से पानी टपक रहा है। किसी ने हाथ में पान का बीड़ा ले रखा है, कोई हाथ में मथानी लिए रह जाती है तो कोई सनी हुई मिट्टी छोड़कर चल देती है। एक हाथ में लोई लिए चली आती है, दूसरी के हाथ गोबर से भीगे हुए हैं। जिस प्रकार सामूहिक जीवन के चित्रण में मानवीय सम्बन्धों के वैयक्तिक और सामाजिक रूपों के सामंजस्य और संघर्ष का विवेचन किया जाता है उसी प्रकार किसी युग की संस्कृति के निरूपण के लिए तत्कालीन उपयोगितावादी, सौदर्यवादी और कलात्मक व्यवहारो का अध्ययन होता है। ये काव्य कला परम्परा, प्रभाव और युग की रूचि को प्रतिबिम्बित करते हैं। ऐतिहासिक परिस्थितियाँ परम्परा के स्वरूप को बहुत कुछ बदलती है। प्राचीन काल से ही भारतवासियों को अपने वेश-भूषा की ओर विशेष आकर्षक रहा है। चूंकि भारत सदियों से विभिन्न वर्गों एवं संस्कृतियों का देश है, इसलिए उसके पहनावे में भी अंतर पाया जाता है क्योंकि हर एक वर्ग या समुदाय के लोगों का वस्त्र उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार होता है।

भारत में वस्त्रों की विभिन्नता की दृटि से (सत्रहवी से उन्नीसवीं सदी तक) विशेष महत्व है क्योंकि इस काले तक आते-आते भारतीयों ने सारे बाह्य प्रभावों को आत्मसात करके या तो अपना बना लिया था या फिर विदेशी समझकर अग्राह्य मान लिया था वस्त्र उपयोगिता और प्रदर्शन दोनों ही उद्देश्यों को लेकर प्रचलित होते हैं। चूंकि उत्तर मध्ययुगीन समाज विलासिता तथा सम्पन्नता का युग था फलतः अवलोकित काल में अधिकांशतः वस्त्रों का ग्रहण उपयोगिता की अपेक्षा वैभव-प्रदर्शन तथा ऐंद्रिक उद्दीपन की दृष्टि से अधिक दिया गया है। जैसे-जैसे देश में सामाजिक परिवर्तन होता जा रहा था वैसे-वैसे लोगों के विचारों, रहन-सहन तथा परिधानों में अंतर जा रहा था । अब लोगों का ध्यान सादगी से हटकर तड़क-भड़क सुनहरे तारों से बने रेशम के कपड़ों की ओर आकर्षित हुआ। आर्थिक सम्पन्नता के अनुरूप लोगों ने इस प्रकार के आकर्षित वस्त्रों का प्रयोग शुरू किया |

इस काल में प्रचलित वेशभूषा ही धारण की जाती थी। सामान्य तौर पर निम्न प्रकार के वस्त्र प्रचलित थे–शरीर के मध्य भाग में लपेटकर पहना जाने वाला साड़ी नामक परिधान स्त्रियों को विशेष प्रिय था। साड़ी को कवियों ने पह, दुकूल, वसन, अंबर, पंचतोरिया चीर, लहरिया आदि अनेक नामों से अभिहित किया है। साड़ी भारत में प्रचलित वस्त्रों में सर्वाधिक प्राचीन वस्त्र है। तत्कालीन समय में विभिन्न रंगों की साड़ियाँ प्रचलित थी। किनारीदार साड़ी भी तत्कालीन समाज में प्रचलन में थी समृद्ध परिवारों की स्त्रियाँ बहुमूल्य सोने चांदी के तारों से बनी कढ़ाई वाली साड़ी पहनती थीं जिसके कोरों पर विभिन्न प्रकार के मोती आदि लगे रहते थे। इस प्रकार के मूल्यवान, अलंकरण युक्त (कढ़ाई इत्यादि वाले) साड़ी का प्रयोग उच्च वर्गीय और सम्पन्न परिवार की स्त्रियाँ तो बस नाम मात्र के लिए साड़ी पहनती थी या साड़ी के स्थान पर एक मोटी सी चादर ओढ़ लेती थीं निम्न वर्गीय स्त्रियाँ एक प्रकार की महीन (झीनी) साड़ी भी पहनती थी। इसका कपड़ा इतना हल्का होता था कि यह उनके शरीर के भार को संभालने का सामर्थ्य नहीं रख पाता था। तात्पय यह है कि उठने-बैठने मात्र से ही साड़ी के तंतु खिंच जाते थे |

साड़ी विभिन्न प्रकार के कपड़ों से निर्मित होती थीं। कवियों ने कुछ कपड़ों का उल्लेख किया है जैसे- जरतारी की साड़ी जरतारी वह कपड़ा है जिस पर सुनहरे तार टके हो या जरी से बेल-बूटे बनाये गये हों, विशेष तौर पर सलमे-सितारे से युक्त वस्त्रों कों जरतारी कहा गया। सालू की साड़ी तथा असाबरी की साड़ी आदि। साड़ी कमर में लपेटकर इस प्रकार पहनी जाती थी कि उसका एक सिरा ऊपर होता था जिससे स्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर घूघट निकालने में आसानी होती थी:-जरतारी सारी ढके नैन लसति मतिराम, मनो कनक पंजर परे खंजरीत अमिराम | कभी-कभी सौन्दर्य की दृष्टि से साड़ी को बाई ओर से घुमाकर कंधे पर डाल लिया जाता था। प्राचीन भारतीय वस्त्रों में परिधेय वस्त्र तीन प्रकार के माने गये हैं- निबन्धीय (बाँध कर पहने जाने वाले) जैसे-साड़ी, सलवार आदि प्रेक्षेप्य (कंचुकी चोली) और उत्तरीय जिनमें दुपट्टा, चादर, ओढ़नी आदि आते हैं। कंचुकी की गणना प्रेक्षेप्य वस्त्र के अन्तर्गत की गई है। कंचुकी का प्रारम्भ कब से हुआ इस सम्बन्ध में मतभेद है कुछ लोगों का कहना है कि कंचुकी का सामान्य चलन गुप्ताकल से प्रारम्भ हुआ। तो कुछ इसका आम चलन राजपूतों के काल से मानते हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के पालवंशीय चित्रों तथा उस काल के अपभ्रंश शैली के चित्रों में भी कंचुक जैसे वस्त्र ही अधिक अंकित हुए हैं। वक्ष को ढकने के लिए कटि से ऊपर के वस्त्रों में कंचुकी का नाम विशेष रूप से कवियों ने लिया है। कंचुकी के अलावा अंगिया, चोली, कसनि-तनी आदि वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।

कंचुकी या चोली को शरीर विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है।' साड़ी की भांति उपर्युक्त वस्त्र भी विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा रंगों से निर्मित होते थे। कुंचुकी, अंगिया जैसे वस्त्र साड़ी के साथ पहने जाते थे। समकालीन कवियों ने 'चूनरी नामक वस्त्र जिसे स्त्रियाँ धारण करती थीं का उल्लेख किया है। चूनरी विवाह के अवसर पर विशेष रूप से धारण किया जाता रहा। अतः इसे मांगलिक वस्त्र माना गया। कवि ने गौने की चुनरी का विशेष महत्व स्वीकार किया है। जमीला बृजभूषण ने बताया है कि एक अंग्रेज यात्री जिसने दिल्ली तथा अन्य कई स्थानों की स्त्रियों के परिधानों का अवलोकन किया और विवाह के अवसर पर कीमती चूनरी पहनने का वर्णन किया है। उसने बताया कि विवाह के अवसर पर दुल्हन न केवल भारी गहने पहनती थी बल्कि सोने-चाँदी से युक्त तारों की कढ़ाई वाले भारी कपड़े भी पहनती थी। उसने इस प्रकार की कढ़ाई वाले एक भारी चुनरी का उल्लेख करते हुए कहा कि मैंने भारी कढ़ाई वाले एक ऐसी चुनरी को देख जिसे चार आदमी मिलकर तह करते थे | वस्त्रों के सन्दर्भ मेम भारतीय स्त्रियों की सदैव से विशेषता रही है कि वे समय तथा मौसम के अनुसार वस्त्रों के रंगों का चुनाव करती है। फलतः स्त्रियों की इस विशेषता को दृष्टिगत रखकर ही संभवतः कवि ने समयानुसार चूनर के रंगों का वर्णन किया है। लाल रंग की चूनर का वर्णन प्रायः कवियों ने वर्षा ऋतु के सन्दर्भ में किया गया है ।

लाल रंग के अलावा चूनरी के अन्य विभिन्न चटकीले वर्णों का भी उल्लेख मिलता है। राजस्थान में जहाँ घाघरे का प्रचलन है वही नीवी बंध के साथ आगे खोसकर पहना जाने वाला लाल छपाइ का वस्त्र चूनरी कहलाता है लेकिन वहाँ की मारवाड़ी स्त्रियों द्वारा पहनी जाने वाली एक विशेष प्रकार की छपाई वाली साड़ी को भी चूनरी कहते है, जिसके ऊपर प्रायः चादर भी ली जाती है। बिहार में रंगीन किनारे की ओढनी या चादर चूनरी कहलाती है। तत्कालीन समय में औरतें कमर तक के जो वस्त्र यथा चोली, अंगिया (ब्लाऊज), कंचुकी आदि पहनती थी उसके साथ दुपट्टा या चुनरी का प्रयोग करती थीं। इस प्रकार के वस्त्रों के साथ चूनरी धारण करने की प्रथा उन्होने राजस्थानी औरतों से लिया। लखनऊ दरबार से सम्बन्धित चित्रों में औरतों को शरारा, कुर्ती तथा दुपट्टा पहने दिखाया गया है।इस प्रकार का फैशन किसी न किसी रूप में चलता रहा। ओढ़नी, निचोल आदि का प्रयोग साड़ी के साथ नहीं होता था क्योकि साड़ी के ऊपर वाला हिस्सा स्वयं ओढ़नी और चूंघट का काम करता था। घाघरा या लहंगा एक कटि वस्त्र है, जिसके दोनों सिरे मिलाकर ऐसे सिले रहते हैं कि उनके भीतर से होकर सूत उस वस्त्र को बांध सके |

किन्तु घाघरे या लहंगे का प्रचलन कब से हुआ इस सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार घाघरे या लहंगे का भारत में प्रवश कुषाण एवं गुप्तकाल में ही हो गया था। इसका प्रचार–प्रसार पांचवी-छठी शताब्दी में भारत आने वाली मध्य एशिया की विभिन्न जातियों से हुआ। लगभग उसी समय सस्सानी ईरान के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों से भी लहंगे के प्रसार में सहायता मिली। कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि मुस्लिम शासन की कुछ शताब्दियों के बाद यह सर्वसाधारण में पूर्ण प्रचलित हो चुका था साहित्यकारों ने घाघरा को संस्कृत शब्द घर्घर का विकृत रूप माना है। जो समीचीन नहीं प्रतीत होता है क्योकि हिन्दूकाल में घाघरा का प्रचलन बिल्कुल नहीं था तथा तत्कालीन चित्रों स्थापत्य कलाओं और साहित्य कृतियों में इसका उल्लेख नहीं मिलता | उपर्युक्त कथनों से पूर्णतया स्पष्ट है कि घाघरा या लहंगा भारतीय वेश-भूषा के अन्तर्गत नहीं आता। किन्तु सम्प्रति इसे हिन्दू घरों में सांस्कृतिक महत्व प्राप्त है और विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर पुत्रवधू को अन्यान्य वस्त्रों के साथ चुनरी और लहंगा दिये जाने का प्रचलन है। विशेषकर राजपूताना, उत्तरी भारत और किसी सीमा तक मध्य प्रदश में लहंगे का प्रचलन था।

संदर्भ :

1. मैडेल्सलो, पृ0 51, डेका वेली, पृ0 461, वर्नियर, पृ0 413, 2 कापर, एलिजाबेथ हरम एण्ड द पर्दा, पृ0 65, द
2. स्प्रिट ऑफ द इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ0 163-164
3. मतिराम, रसराज, पृ0 251, मतिराम रत्नावली, पृ0 74, छं0 134, मतिराम सतसई, पृ0 269 छं0 81
4. मनूची, सटोरिया द मोगोर, भाग-2 पृ0 175, डी0 लायट, द इम्पायर ऑफ द ग्रेट मुगल, होलीलैंड एण्ड बनर्जी, पृ0 80, पी0एन0 ओझा से उद्धृत । मनुची सटोरिया द मोगोर, पृ0 352, बर्नियर, पृ0 89, डेला वैलो, पृ0 430
5. सोमनाथ ग्रन्थावली द मोगोर, पृ0 352, बर्नियर, पृ0 89, डेला वैवलो, पृ0 51, बर्नियर, पृ0 430 भूषण ग्रन्थावली, रस पीयूष निधि, पृ0 146 छं0 9, आईन-अकबरी, अनुवादक ब्लाखमन, पृ0 96 (अबुल फजल ने बुरके को अकबर द्वारा 'चित्रगोपिता' नाम दिये जाने का उल्लेख किया है)
6. ए0के0 शफात, जान मार्शल इन इण्डिया, पृ0 338, लंदन, 1927 डा0 मोहन अवस्थी, हिन्दी रीति कविता और समकालीन उर्दू काव्य, पृ0 106, मतिराम, रसराज, पृ0 251 छं0 217
7. डा0 मोहन अवस्थी, पृ0 104-105
8. देव ग्रंथावली, रसविलास,पृ0 238, छं0 34,
9. ललित ललाम, पृ0 323, छं0 241, कुमुदनी : स्टडीज इन
10. मुगल पेंटिंग शोध प्रबंध (अंसारी, पृ0 81)
11. नाथ ग्रंथावली : सुजान विलास, पृ0 643, छं0 110
12. कृष्णन, रिलीजन एण्ड सोसायटी, पृ0 143, मेडेल्स्लो , पृ0 51
13. द स्प्रिट ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ0 158, आपस्तम्ब, 2, 5-11-7 बौधायन धर्मसूत्र 13–47, रामचरित मानस (गुटका), पृ0 233
14. भिखारीदास ग्रंथावली, पृ0 2 छं0 7, मतिरामे ग्रंथावली, पृ0 316
15. टाड, राजस्थान का इतिहास, पृ0 739-40 मनूची, सटोरिया द मोगोर, भाग-2 पृ0 343,
16. पी0एम0 ओझा, ग्लिम्पसेज ऑफ सोशल लाइफ
17. इन मुगल इण्डिया, पृ0 63 याज्ञवल्क्य स्मृति, व्याख्याकार डा0 उमेश चन्द्र पाण्डेय 1/175
18. डा0 शकुन्तला अरोरा, रीतिकालीन श्रृंगार कवियों की नैतिक दृष्टि, पृ0 100
19. मतिराम रत्नावली, पृ0 108, छं0 3 मतिराम ग्रंथावली (सतसई), सं0 कृष्ण बिहारी मिश्र, छं0 __9, शकुंतला अरोरा, पृ0 100
20. देव, रीति श्रृंगार, डा0 नरेन्द्र, पृ0 106, मतिराम ग्रंथावली (सतसई), सं0 कृष्ण बिहारी मिश्र, - छं0 7 आइने अकेबरी, अनु0 सर जदुनाथ सरकार, पृ0 336, कार्नल जेम्स टाड, द नाल्स एण्ड एन्टी क्वीटीज ऑफ राजस्थान, ऐडीटेड विलियम क्रुक भाग-2, पृ0 784 मनुस्मृति, गोपालशास्त्री 5, छं0 154